गंगा-पुस्तकमाला का १२७वाँ पुष्प
टर्की का
मुस्तफ़ा कमालपाशा
(जीवन-चरित्र)
37643
IN523.1 QP1U

विज्ञान बोध

प्रथम भाग

[हैदराबाद राज्य के पाठ्यक्रम के अनुसार पाँचवीं कक्षा के लिए]

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

हैदराबाद राज्य के पाठ्यक्रम में पाँचवीं श्रेणी के लिए विज्ञान के जो विषय निर्धारित किये गए हैं, उनके अनुसार यह पुस्तक तैयार की गई है। पुस्तक में पारिभाषिक शब्दों के लिए यह नीति अपनाई गई है कि हिन्दी के साथ अंग्रेजी के शब्द भी द दिये जाएँ। सभा विज्ञान के लिए अन्य पाठ्यक्रम भी प्रकाशित कर रही है।

प्रकाशक

(शिक्षा विभाग हैदराबाद राज्य के पाठ्यक्रम के अनुसार)

विषय सूची

वायु

जल

अन्न

शारीरिक शुद्धता

विज्ञान-बोध

वायु

बिना अन्न और जल के हम कुछ दिन जीवित रह सकते हैं; किन्तु बिना वायु के कुछ क्षण भी जीवित रहना कठिन हो जाता है। वायु जीवन का महत्वपूर्ण आधार-स्तम्भ है। आइए इस पदार्थ के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान प्राप्त करें।

वायु क्या है :

ग्रीष्म ऋतु में गरमी से छुटकारा पाने के लिए जब हम पंखा करते हैं तो अनुभव होने लगता है कि कोई वस्तु हमारे शरीर को छू रही है। पेड के पत्ते हिलने लगते हैं तो हमें जान पड़ता है कि कोई चीज उनसे मिल रही है। यही वह वस्तु है जिसे हम वायु कहते हैं। हम वायु को देख नहीं सकते किन्तु उसे अनुभव करते हैं। वायु का न रंग होता है न रूप और न ही कोई स्वाद।

वायु द्रव्य है :

आप यह जानते हैं कि द्रव्य किसे कहते हैं? द्रव्य (Matter) में भार अथवा वज़न होता है। द्रव्य स्थान को व्याप्त करता है। द्रव्य में दबाव भी पाया जाता है। ये सब बातें जिसमें हो उसे द्रव्य कहते हैं। ये बातें वायु में भी हैं। इस लिए वायु द्रव्य है। इसे प्रयोगों द्वारा सिद्ध करके दिखाया जा सकता है।

वायु का वजन होता है :

किसी साइकिल के ट्यूब में अथवा फुटबाल के ब्लाडर में पम्प द्वारा वायु भर कर उसका वजन देखिये। इसमें से अब वायु को निकाल कर पुनः वजन लीजिए तो मालूम होगा कि पहले की अपेक्षा वजन में कमी हुई है। वजन की यह कमी वायु के निकल जाने के कारण हुई। अतः यह सिद्ध हुआ कि वायु का वजन होता है।

वायु स्थान को व्याप्त करती है :

रबर के फुग्गे में, मुँह से वायु भरिये। वह फूलता जायेगा। यदि भरने की यह क्रिया जारी रही तो कुछ देर बाद वह फट जायेगा। कारण यह है कि उस फुग्गे में जितने स्थान की गुंजाइश थी उसे वायु ने व्याप्त कर दिया; किन्तु वायु का आना जारी है और उसके लिए कोई गुंजाइश नहीं। इस लिए वह फट गया। इस से यह स्पष्ट हुआ कि वायु स्थान को व्याप्त करती है।
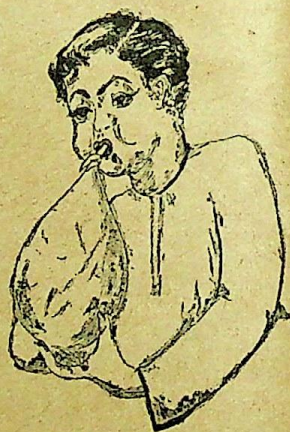
वायु का दबाव होता है :
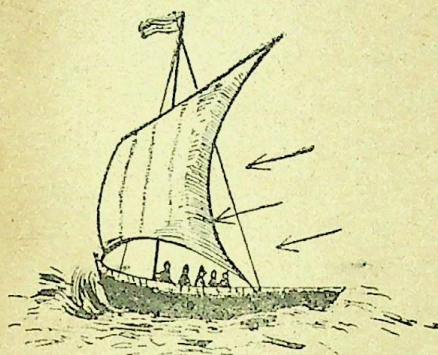
वायु का वज़न होता है और इस वजन के कारण उसमें दबाव का होना आवश्यक है। तेज चलती हुई वायु की विपरीत दिशा में साइकिल के चलाने पर वायु के दबाव का अनुभव होता है। नावें भी पाल की सहायता से चलती हैं। उस पाल पर वायु का दबाव ही काम करता है।

इन उपरोक्त प्रयोगों द्वारा आप यह समझ गये होंगे कि वायु द्रव्य क्यों है।

वायु का उपयोग :

वायु प्राणी मात्र के लिए बहुत ही आवश्यक है। मनुष्य तथा दूसरे जीव इसी वायु से जारक (Oxygen) को श्वास से भीतर लेते हैं, और प्रश्वास द्वारा प्रांगार द्वि-जारेय (Carbon di-oxide) बाहर छोड़ते हैं। जारक और प्रांगार के बारे में आप आगे चल कर पढ़ेंगे। इस प्रांगार द्वि-जारेय का उपयोग पौधे अपने जीवन के लिए करते हैं। वायु के कारण साइकिल, मोटर, वायुयान इत्यादि काम करते हैं। अतिरिक्त इसके वायु दहन क्रिया के काम आती है। इस दहन में जारक तत्व सहयोग देता है। आप इसे प्रयोग कर के देख सकते हैं।

प्रयोग :
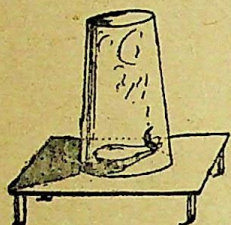
यदि जलते दीप पर काँच का पात्र ढंक दिया जाए तो वह थोडी देर जल कर बुझ जायगा। कारण यह है कि उस काँच के पात्र में जितनी जारक थी दीप उतनी देर तक जलता रहा। उसमें अब जारक न रही इस कारण वह बुझ गया। अतः दहन के लिए जारक का होना आवश्यक है।

वायु के संघटक :

वायु कई पदार्थों का सम्मिश्रण है। जारक, भूयाति (Nitrogen) प्रांगार द्विजारेय, जल वाष्प, रजकण, इत्यादि के सम्मिश्रण को वायु के संघटक कहते हैं। वायु मण्डल का १/५ भाग जारक और ४/५ भूयाति है। इसे हम प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकते हैं।

चीनी की एक मूषा द्रावण (Crucible) में कुछ भास्वर (फासफोरस) लेकर उसे द्रोणी (Trough) में के जल पर तैरा दीजिए और घंटी कलश (Belljar) से ढंक दीजिए। इसके बाद कलश के काग को निकाल कर भास्वर जलाइए और फिर बन्द कर दीजिए। भास्वर के जलने पर कलश का भीतरी भाग सफ़ेद धुएँ से भर जाएगा जो थोड़ी देर बाद विलीन हो जाएगा। तदन्तर कलश के १/५ भाग तक पानी चढ़ आयेगा।

इसका कारण यह है कि भास्वर के जलने में कलश के भीतरी वायु की जारक प्रयोग में आगई और उसका स्थान जल ने ले लिया। परीक्षण से मालूम होगा कि कलश का शेष $\frac{4}{5}$ भाग भूयाति है।

भूयाती (Nitrogen) :

वायु मण्डल का $\frac{4}{5}$ भाग भूयाति है। यह भी रंग, रूप, गन्ध और स्वाद से रहित है। वनस्पतियों के लिये लाभदायक है।

जल वाष्प :

जल को गरम करने से वह वायु रूप में परिणत हो जाता है। यही वायु रूप वाष्प कहलाता है। नदी तालाब और समुद्र के अतिरिक्त वनस्पतियों और हमारे शरीर के छिद्रों तथा श्वास से जल-वाष्प निकल कर वायु मण्डल में मिलता रहता है। यह रंग हीन होने के कारण दिखाई नहीं देता; किन्तु प्रयोग से इसकी उपस्थिति सिद्ध की जा सकती है।
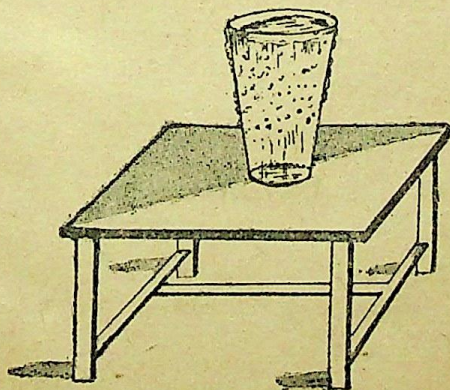
एक गिलास में जल लो और उसकी बाहरी दीवारों

को कपडे से साफ पोंछो। थोडी देर रख छोडने पर इस गिलास की बाहरी दीवारों पर जल बिंदु जम जाते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि वायु में जल-वाष्प रहता है।

रजकण, खनिज और सेन्द्रिय पदार्थ :

ये भी वायु के संघटक हैं। धूली में सेन्द्रिय तथा निरीन्द्रिय पदार्थों के अंश पाये जाते हैं। कोयले की खानें और लोहा तांबा इत्यादि के रासायनिक पदार्थ बनाने के कारखाने हों तो खनिज पदार्थों के सूक्ष्मांश वायु में रहते हैं। सेन्द्रिय पदार्थों में वस्तुओं के सडने-गलने के कारण उनके सूक्ष्मांश और रोगोत्पादक जीवाणु भी पाए जाते हैं।

जारक (Oxygen)

जारक भी वायु का एक संघटक है। इसकी विशेष और विस्तृत जानकारी दी जाती है।

इतिहासः—किसी पदार्थ के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व यह जान लेना अच्छा होता है कि उसे किसने और किस प्रकार आविष्कार किया। जारक का महत्व हमें इसी से मालूम होता है कि उसके बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। इस प्राणदायक तत्व का आविष्कार इंग्लैण्ड और फ्रांस के वैज्ञानिक प्रीस्टले और शील ने एक साथ किया। किन्तु लिवासिये ने इसका नाम इस आधार पर रखा कि जब दूसरे पदार्थ इसमें जलते हैं तो वे जल में घुल कर आम्ल (Acid) बनाते हैं।

अतः उसने इसका नाम आक्सिजन रखा। आक्सिजन का अर्थ अम्ल क्षुण्ण है (Acid powder)

उपस्थितिः—आइए अब यह देखें कि जारक कहाँ कहाँ से हमें उपलब्ध होता है। यह तो हमने प्रयोग द्वारा देख ही लिया कि वायुमण्डल का $\frac{1}{5}$ भाग जारक है और साथ ही जल में इसकी मात्रा बहुत अधिक रहती है। यह वायुमण्डल और जल ही में नहीं अपितु कई पदार्थों के साथ संयुक्त रहता है। उदाहरणार्थः—शोरा, पोटाशियम्, क्लोरेट (दहातु निरीय) पोटाशियम् पर मैंगनेट (दहातु अतिलोहनीय) और रेड मरक्यूरी आक्साइड (पारद जारेय)।

तैयारी :

(१) रेड मरक्यूरी आक्साईड एक लाल क्षुण्ण है। इसे परीक्षण नाल (Test Tube) में लेकर गरम किया जाए तो जारक विमुक्त होता है। यदि इस में जलती बत्ती को प्रवेश किया जाए तो वह तीव्रता के साथ जलने लगेगी। कारण यह है कि जारक जलने में सहयोग देता है। इसी विधि से प्रीस्टिले ने जारक प्राप्त किया था।
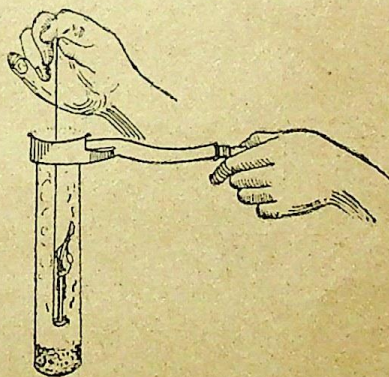
(२) जल से जारक विद्युत सहयोग से प्राप्त करते हैं।

प्रयोगशाला :

पोटासियम क्लोरेट को गरम करके प्रयोगशाला में जारक तैयार करते हैं। किन्तु इसमें म्यांगनीस डाइआक्साइड (Mangnese dioxide) मिला दिया जाता है जो स्वयं अपरिवर्तित रहते हुए क्रिया को तीव्र कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि कम ताप पर तीव्रता के साथ जारक उत्पन्न होता है।

इसके लिए यह किया जाता है कि एक कठोर परीक्षण नाल (Test Tube) में ३ भाग पोटाशियम क्लोरेट और १ भाग म्यांगनीस डाइआक्साइड लेकर एक छिद्रवाले काग से उसका मुँह बन्द किया जाता है। इस छिद्र से प्रधान नाल (Delivery tube) के एक सिरे को जोड़ कर दूसरा सिरा, जल भरे द्रोणी में रखे हुए मधु छत्र निधाप (Bee hive shelf) में रखते हैं।
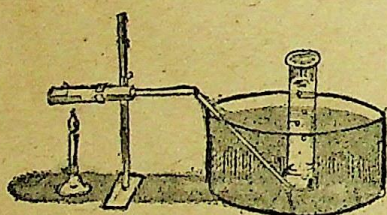
इस मधु छत्र निधाप पर वाति कलश (Gas Jar) को पानी से भर कर औंधा रख दिया जाता है। परीक्षण नाल को स्थाय में जकड़ कर गरम करने पर शीघ्रता के साथ जारक विमुक्त होकर प्रदान-नाल से होते हुए कलश के जल को हटा कर इकट्ठा होता है। इस प्रकार जल को हटा कर इन दोनों को जल की स्थानापत्ति विधि से संग्रहीत होना कहते हैं। प्रयोग के लिए कोई छः सात कलश इस तत्व से भर कर उनके मुँह पिधान से बन्द कर देते हैं।

गुण :

(१) वाति भरे कलश को लेकर रंग देखिए। कोई रंग दिखाई नहीं देगा।

(२) पिधान निकाल कर गंध मालूम कीजिए। कोई गंध न आयेगी।

(३) तत्पश्चात स्वाद देखिए। कोई स्वाद भी न पाएँगे। अतः जारक रंग, गंध तथा स्वाद से हीन है।

(४) दूसरे वाति भरे कलश को लेकर जलती बत्ती को प्रवेश कीजिए। वह अधिक प्रकाश के साथ जलेगी। क्योंकि जारक जलने में सहयोग देता है। अतः यह दहन-पोषक है।

(५) एक ज्वालक चम्मच में रक्त-तप्त कोयले को लेकर जारक के कलश में प्रवेश कीजिए। वह तीव्र प्रकाश के साथ जलकर लुप्त हो जायेगा। इसमें चूने का पानी डालिए। वह दूधिया हो जायेगा। अर्थात् कोई एक नई वस्तु बनी है जो चूने के पानी को दूधिया करदी है। यह प्रांगार द्विजारेय है। अर्थात् जारक, प्रांगार के साथ संयुक्त होकर प्रांगार द्विजारेय बना दिया। इस प्रकार यदि भास्वर (Phosphorus) प्रवेश करते तो भास्वर पंच जारेय (Phosphorus Pentoxide) बनता है।

अतः जारक अन्य तत्वों के साथ मिलकर उनके जारेय बनाता है।

उपयोगः—जारक का उपयोग सबमें बढ़ कर हम करते हैं। श्वास-प्रश्वास का चलना जीवन का लक्षण है। श्वास

द्वारा जो वायु हम लेते हैं उसमें से यही जारक को हमारा रक्त ग्रहण करता है।

जारक में हमने देखा कि वस्तुएँ तीव्रता के साथ जलती है। अतः इस गुण से लाभ उठाकर कठोर धतुओं के गलाने में इसका उपयोग किया जाता है। जारकोद्जन (Oxy-hydrogen) और जारशुक्त लेन्य (Oxi-actylence) ज्वाला यह उसके उदाहरण है।

जारक का उपयोग बीमारों के देने के लिए डाक्टर भी करते हैं।

प्रांगार द्विजारेय (Carbon dioxide)

हम पहले ही बता चुके हैं कि प्रांगार द्विजारेय वायु का संघटक है। यहाँ उसी की जानकारी दी जायेगी। एक परीक्षण-नाल में चूने का पानी लेकर फूँक नाल (धमनाड) द्वारा मुँह से वायु प्रवेश कीजिए। वह दूधिया हो जायेगा। यह वाति जो चूने के पानी को दूधिया करदी प्रांगार द्विजारेय है। इस प्रांगार द्विजारेय को सबसे पहले वान हेलमान्ट (Van Helmont) ने तैयार किया किन्तु लिवासियार (Lavoiser) ने सिद्ध किया कि यह प्रांगार द्विजारेय है।
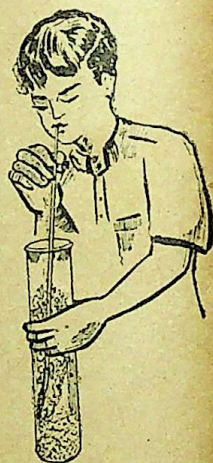
उपस्थितिः--हम प्रश्वास द्वारा प्रांगार द्विजारेय शरीर के बाहर छोडते हैं। वायु का यह एक आवश्यक संघटन है कारखानों की चिमनियों से भी यही वाति निकलती है।

तैयारी :

जिस पत्थर से हम चूना बनाते हैं और जिस सोडे का प्रयोग हम धोने और खाने के लिए करते हैं उन दोनों से प्रांगार द्विजारेय को प्राप्त किया जाता है। विज्ञान की भाषा में चूने का पत्थर, कैलशियम कार्बोनेट (चूर्णातु प्रांगारीय) और सोडियम कार्बोनेट (क्षारातु प्रांगारीय) कहते हैं।

प्रयोगशाला विधान :

प्रयोग शाला में इस प्रांगार द्विजारेय को चूना पत्थर पर उदनीरिक आम्ल (Hydro chloric acid) की क्रिया से तैयार करते हैं।

एक अनेक ग्रीव कूपी (Woulfs bottle) में चूना पत्थर के कुछ टुकडे लेकर उसका मुँह दो छिद्रवाले काग से बन्द करिए। एक छिद्र से शृगाल निवाप (Thistle funnel) इस प्रकार प्रवेश करिए कि उसकी नाल तल तक पहुँचे। दूसरे छिद्र से प्रदान नाल के एक सिरे को जोड़ कर दूसरा सिरा प्राति कलश में चित्र के अनुसार रखिए। शृगाल-निवाप द्वारा तीव्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के प्रवेश करने पर ओजस्व
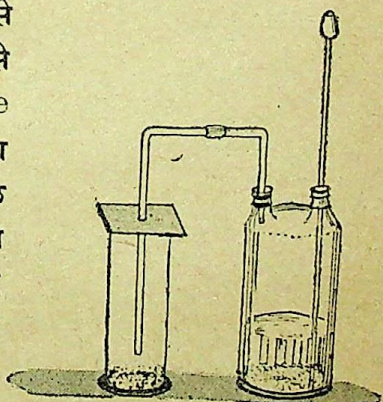
क्रिया के साथ प्रांगार द्विजारेय विमुक्त होगा जो प्रदान नाल से होते हुए कलश की वायु को हटा कर संग्रहीत होगा। इस संग्रहण को वायु के ऊपरी स्थानापन्न से संग्रहीत होना कहते हैं। कुछ कलश इस वाति से भर कर उन पर प्रयोग कीजिए।

गुण :—

(१) इस वाति से भरे कलश को लेकर उसका रंग देखिए। कोई रंग दिखाई न देगा।

(२) उस कलश का पिधान निकाल कर सावधानी से सूंग कर देखिए। कोई गंध नहीं आएगी।

(३) फिर उसका स्वाद देखिए। उसका स्वाद खट्टा अर्थात् आम्लिक पाएँगे।

अतः प्रांगार द्विजारेय रंग और गंध हीन है, किन्तु आम्लिक स्वाद रखता है।
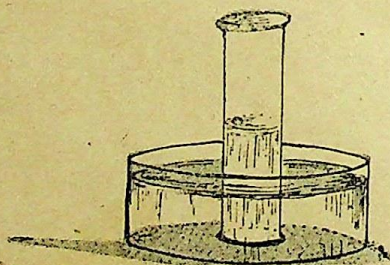
(४) एक द्रौणी में जल लेकर उसमें प्रांगार द्विजारेय से भरे कलश को औंधा रखिए। थोड़ी देर में जल, कलश में चढ़ आयेगा।

कारण यह है कि प्रांगार द्विजारेय जल में घुल गया और उसमें शून्यांक का निर्माण हुआ। इस शून्यांक को जल ने भर दिया।

अतः यह सिद्ध हुआ कि प्रांगार द्विजारेय जलमें घुलनशील है। इसीलिए इसे जल पर संग्रहित नहीं किया जाता।

(५) इस वाति से भरे कलश में एक कीडे को डाल कर मुँह बन्द कीरिए। वह मर जायेगा।

अतः यह वाति प्राण पोषक भी नहीं है।

(६) एक साफ कलश में जलती बत्ती को प्रवेश करिए वह वैसे ही जलती रहेगी। अब इस कलश पर प्रांगार द्विजारेय से भरे कलश को कुछ क्षण रखिए। पुनः उसमें जलती बत्ती को प्रवेश कीजिए वह बुझ जाएगी। कारण यह है कि सदैव वजनी वस्तु नीचे आती है और हलकी ऊपर उठती है। अब पहले कलश में दूसरे कलश की प्रांगार द्विजारेय आगई जो वायु से वजन होने के गुण को सिद्ध करती है। और बत्ती का बुझ जाना इस बात का प्रमाण हैं कि वह दहन-पोषक नहीं।
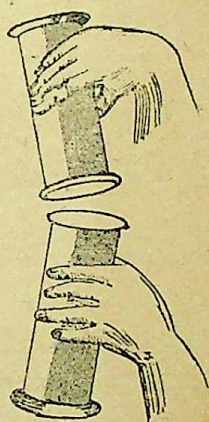
प्रांगार द्विजारेय का उपयोग :

प्रांगार द्विजारेय में और भी दूसरे गुण हैं जिनका हम लाभ उठाकर अपने प्रयोग में लाते हैं। बाजार में जो सोडे के

शीशे बिकते हैं और जिसका प्रयोग हम पाचन के लिए करते हैं उनमें यही प्रांगार द्विजारेय है। सिनिमा अथवा करखानों में हम बड़े बड़े लाल बेलन देखते हैं। जिनका उपयोग आग लगने पर बुझाने के लिए किया जाता है। इन बेलनों में द्रव भरा रहता है। यह द्रव इसी प्रांगार द्विजारेय का है। प्रांगार द्विजारेय सरलता से द्रव में परिणत होता है। इन बेलनों के छोटे मार्ग खोलने पर दबाव कम हो जाता है और वह पुनः वाति में परिवर्तित हो कर शीघ्र आग को बुझा देता है। कारण यह है कि प्रांगार द्विजारेय बुझाने की शक्ति रखती है। द्रव प्रांगार द्विजारेय को अधिक दबाव के साथ सर्द किया गया तो वह ठोस बन जाता है। यह कोमल, सफेद बरफ सा पदार्थ होता है। इस से शीघ्र आइसक्रीम बन जाती है। बाजार में शुष्क बरफ के नाम से यह पदार्थ बिकता है। कारण यह है कि बिना पिघले ही वाति में परिणत हो जाता है।
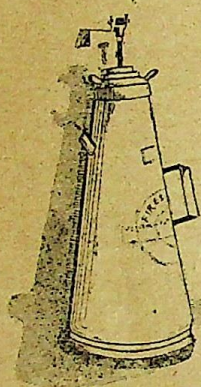
हम दिन रात प्रश्वास द्वारा प्रांगर द्विजारेय छोड़ते ही रहते है और श्वास द्वारा जारक लेते हैं। पौध प्रांगार द्विजारेय को अपने प्रयोग में लाते हैं और उसके उपलक्ष्य में जारक देते हैं। इस प्रकार प्रकृति में दोनों बातियों का आदान प्रदान होता रहता है। अतः जो प्रांगार द्विजारेय प्राणियों के लिए हानिप्रद है वही पोदों के लिए प्राणदायक है।

दहन :

विद्युत को छोड़ कर जो पदार्थ जैसे लकड़ी, तेल कोयला और कागज़ ये सब वायु की उपस्थिति में जलते हैं। इन पदार्थों को दहन शील कहते है। जब ये पदार्थ जलते हैं तो वायु का जारक जलने में सहयोग देता है। इसी लिए जारक दहन पोषाक है। अतः दहन एक ऐसी रासायनिक क्रिया है जो दहन शील और दहन पोषक पदार्थों के बीच होती है, जिससे ताप और प्रकाश निकलता है।

श्वास प्रश्वास :

प्रत्येक प्राणी जन्म लेते ही वायु को श्वास द्वारा शरीर के भीतर लेता और प्रश्वास द्वार उसे बाहर निकालता है। यह श्वाश और प्रश्वास की क्रिया मरने तक जारी रहती है। अतएव हमारा जीवन वायु पर निर्भर रहता है और इसके लिए उसका शुद्ध होना आवश्यक है। जिस वायु में जारक अधिक होती है वह शुद्ध वायु कहलाती है और यदि प्रांगार द्विजारेय अधिक हों तो वह अशुद्ध। यदि कमरे में कुछ लोग थोड़ी देर बैठे जाएँ तो वे घबराने लगेंगे। कारण कि वहाँ अशुद्ध वायु अधिक हो जाती है। इसके विपरीत मैदानों में चाहे कितने ही आदमी क्यों न बैठें कुछ नहीं होता। इसलिए कि वहाँ शुद्ध वायु की मात्रा अधिक होती है।

हम जब श्वास लेते हैं तो वायु फेफड़ों में पहुँचती है और रक्त के साथ मिल जाती हैं। रक्त, वायु से जारक ग्रहण करता है और शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की क्रिया से बनानेवाली

प्रांगार द्विजारेय को दे देता है जो प्रश्वास द्वारा बाहर निकल जाता है। अब जारक युक्त रक्त हृदय में पहुँचता है और वहाँ से पूरे शरीर का दौरा करता है, जिसके सहयोग से वह अपना कार्य करता है।

अतः शुद्ध वायु न मिले तो शरीर के अंग प्रत्यंग अपना काम करना छोड़ देंगे।

संवातक Ventilation :

स्वास्थ्य की रक्षा की कुंजी विशुद्ध वायु है। अशुद्ध वायु भयंकर रोगों का घर है। अतः जहाँ हम रहते सहते, घूमते-फिरते और काम-काज करते है वहाँ विशुद्ध वायु का आवागमन होना आवश्यक है। इस आवगमन के प्रबंध को संवातक कहते हैं।
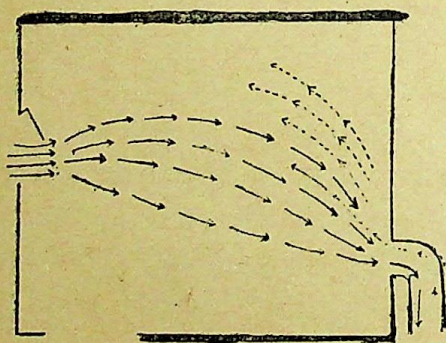
संवातक का प्रबंध मकान के भीतर और बाहर होना चाहिए। हमारे मकानों में काफी दरवाजें खिड़कियाँ और रोशनदान रहें ताकि उनसे वायु का आवागन होता रहे।

जो वायु कमरे में आती है वह गरम हो जाने के कारण हलकी हो कर ऊपर उठती है और रोशनदान से बाहर निकल जाती है। उसके स्थान पर बाहर से भारी और ठण्डी वायु प्रवेश करती है। कुछ लोग सोते समय खिडकियाँ बंद रखते हैं और मुँह को ढाँक कर सोते हैं। दोनों स्थिति में शुद्ध वायु नहीं मिल पाती। अतएव रात में न मुँह ढक कर सोएँ और न खिडकियाँ बन्द रखें। इसके अतिरिक्त सोते समय दीपक बुझा देना चाहिए नहीं तो उनसे निकलनेवाली प्रांगार द्विजारेय वायु को दूषित कर देता है। साथ ही इस बात का भी प्रबन्ध हो कि—

१. नगर की गलियाँ और सड़कें चौड़ी हों।

२. सड़कों के दोनों ओर वृक्षों का प्रबन्ध हो।

३. ग्रीष्म ऋतु में सड़कों पर जल का छिडकाव किया जाएँ।

४. सड़कों और गलियों में कूड़ा कर्कट जमा न होने पाएँ।

५. नगर में खुले मैदान और बाग बगीचे हों।

६. सिनेमा, मिल तथा कारखानों में शुद्ध वायु के आवागमन का प्रबन्ध हो।

वायु का दबाव

सारी पृथ्वी वायु से घिरी हुई है और कोई २०० मील की ऊँचाई तक है। इस घिरी हुई वायु को हम वायु मण्डल करते हैं।

वायु में वजन है। अतः उस वजन के कारण उसका दबाव भी होता है। सामान्यतया हम उस दबाव का अनुभव नहीं करते जो हमारे शरीर पर इस वायु के कारण पड़ता है। वायु का दबाव चारों ओर है और लगभग वह समान रहता है। क्योंकि दबाव चारों ओर से समान है इसलिए उसका प्रभाव हम पर नहीं पड़ता।

वायु के चारों ओर के दबाव को हम प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं।

वायु का निचवार दबाव :—

प्रयोग : एक द्रोणी में जल लिजिए और काँच की नली के एक सिरे को उस जल में रख कर दूसरे सिरे से उस नली के अन्दर की वायु को अपने मुँह द्वारा खींचिए। नली में जल चढ़ आएगा। कारण यह है कि जल की सतह पर वायु का दबाव नीचे है। और नली से वायु के निकलने पर वहाँ का दबाव कम हो गया किन्तु बाहर का निचवार दबाव वही है। अतएव जल नली में चढ़ गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि वायु का दबाव निचवार होता है।

वायु का उचवार दबाव :—

जल से भरे गिलास के मुँह पर कागज को रख कर एकदम औंधा कीजिए। आप देखेंगे कि जल केवल कागज के सहारे रुका हुआ है। कारण यह है कि वायु का दबाव उस गिलास के कागज पर नीचे से ऊपर की ओर काम कर रहा है। इस लिए वह कागज उस गिलास से लगा हुआ है और जल गिरने नहीं पा रहा है।
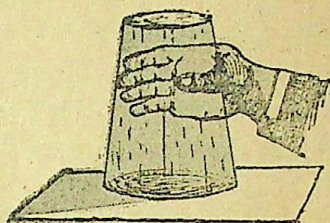
वायु का दबाव चारों ओर है :—

एक पतली दीवार और छोटे मुँह-वाले डब्बे में थोड़ासा जल लेकर गरम कीजिए। जल के उबलने पर डब्बे की भीतरी वायु निकल जाएगी और उसके स्थान पर भाव व्याप्त हो जाएगी। अब कस कर काग से उसका मुँह बन्द करिए। जल डाल कर ठण्डा करने पर आप देखेंगे कि वह बीच से चिपक गया है कारण यह है कि डब्बे को ठण्डा करने पर भीतरी भाप जल में पुनः परिवर्तित हो गई और एक शून्यांक का निर्माण हो गया। साथ ही भीतरी दबाव भी घट गया। किन्तु बाहर का दबाव एक ही है। इस-लिए डब्बा पिचक गया।
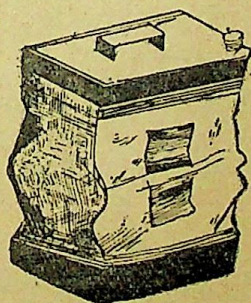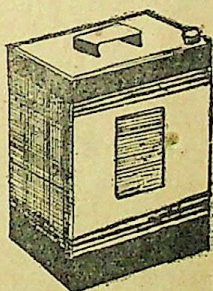
अभ्यास

(१) वायु के संघटन कौनसे हैं और उनके सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

(२) प्रयोग द्वारा सिद्ध कीजिए कि वायु मण्डल का $\frac{१}{५}$ भाग जारक और $\frac{४}{५}$ भाग भूयाति है ?

(३) आप किस प्रकार सिद्ध करेंगे कि वायु द्रव्य है।

(४) श्वास-प्रश्वास की क्रिया को समझाइए।

(५) संवातक किसे कहते हैं और उसके लिए किन बातों पर ध्यान देना चाहिए ?

जल

जीवन में वायु का जितना महत्व है, लगभग उतना ही महत्व पानी का है। रेतीले स्थान पर प्यास लगने पर, वर्षा-ऋतु में जल के न बरसने पर और सफाई तथा रसोई के समय उसका महत्व मालूम होता है। हमारे शरीर का लगभग पौन हिस्सा जल-तत्व है। जल ही हमारे शरीर के भीतरी गंदे पदार्थों को पसीने और मूत्र द्वारा बाहर निकालता है और भोजन के पाचन में सहायता देता है।

जल कहाँ से प्राप्त होता है ?

जल की बहुत बड़ी राशि समुद्र है। नदी, तालाब, झरने और कुएँ में जो जल है वह समुद्र ही से आया है। समुद्र का

जल, वाष्प बन कर उड़ता है और फिर वर्षा के रूप में बरसता है। कहीं यह रुक कर तालाब बन जाता है और कहीं बहकर यही जल नदी कहलाता है। पृथ्वी में समाकर यह कुआँ और झरनों के रूप में प्रकट होता है। नदियों से जल पुनः घूम फिर कर समुद्र में जा मिलता है और इस प्रकार यह सिलसिला चलता रहता है।

वर्षा :—

वर्षा का जल सबसे अधिक स्वच्छ और विशुद्ध होता है। जैसे २ यह नीचे आता है वायु मण्डल में पाई जाने वाली
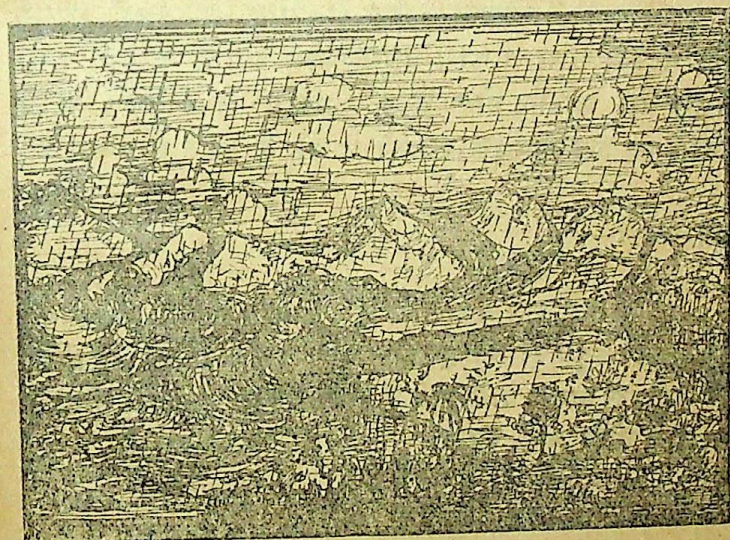
धातियां इसमें मिल जाती है हैं और जब पृथ्वी पर पहुँचता है तो बहुत से लवण मिल कर इसे अशुद्ध कर देते हैं।

झरने और कुँए :—

वर्षा का जल पृथ्वी की छिद्रता के कारण उसके भीतर समाता है और जब उसे कठोर स्तर मिलता है तो फूट पड़ता है अथवा खोद कर निकाला जाता है। यह जल शुद्ध होता है। पृथ्वी से निकलते समय इसमें कुछ खनिज पदार्थ जैसे सोड़ा और गन्धक आदि मिल जाते हैं और यह खनिज जल कहलाता है।

नदी जल :—

यह वर्षा और झरनों के जल से बनता है। इसमें घुलनशील पदार्थों के साथ साथ अघुलनशील पदार्थों के भी कण, कीचड और कीटाणु होते हैं। हिमालय से निकलने वाली नदियों का जल प्रारंभिक अवस्था में बर्फ के गलने से बनता है।

समुद्र जल :—

प्रकृति में जितने प्रकार का जल पाया जाता है उन सबमें समुद्र-जल बहुत ही अशुद्ध होता है। इसमें प्रांगार द्विजारेय और कई एक लवण पाये जाते हैं। यह बहुत ही खारा होता है और पीने योग्य नहीं रहता।

जल की बनावट :—

जल, जारक और उदजन से बना है। इस बनावट में जारक का एक भाग और उदजन के दो भाग होते हैं।

जल के गुण :—

जल रंग, गन्ध और स्वादहीन होता है। यह पारदर्शी और घोलक भी है।

जल में साबुन से फेन निकलता है किन्तु कोई जल ऐसा होता है जिससे फेन नहीं आत । अतः जिस जल से फेन आता है वह हलका जल अथवा मृदुल जल कहलाता है। और जिस जल से फेन नहीं आता वह कठोर जल कहलाता है। जल की यह कठोरता चूर्णातु और भाजातु (Calcium and magnicium) के लवणों के कारण होती है। इस जल को यदि उबाल लिया जाय अथवा चूना मिलाया जाय तो मृदुल जल में बदल जाएगा और साबुन से फेन देने लगेगा। किन्तु किसी जल की कठोरता इन विधियों से दूर नहीं होती। ऐसे जल को स्थायी कठोर जल कहते हैं। यह स्थायी कठोरता क्षारातु प्रांगरी (Sodium carbonate) के मिलाने से दूर हो जाती है। जिस जल की कठिनता उबालने अथवा चूने से दूर हो जाती है वह अस्थायी कठोर जल कहलाता है।

जल का उपयोग :—

जल पीने भोजन पकाने और धोने के काम आता है। भाप के रूप में मशीनों के चलाने में सहयोग देता है और बरफ के रूप में खाद्य वस्तुओं को सुरक्षित रखने में। जल के बिना खेती का करना असम्भव है। जल से वनस्पतियों का पोषण होता है।

जल की अशुद्धता :—

प्रकृति में जो जल हमें प्राप्त होता वह प्रायः शुद्ध नहीं होता। उसमें कुछ न कुछ अशुद्धता अवश्य पाई जाती है। जल की यह अशुद्धता उस स्थान की स्थिति पर निर्भर होती है जहाँ कि वह पाया जाता है। जल में घुलनशील एवं अघुलनशील दो प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं। भ्रजातु, अबरख, सीस, जस्त तथा लोहे के अंश और वातियों में प्रांगार द्विजारेय यह सब घुलनशील अशुद्धियाँ हैं। रेत, मिट्टी, वनस्पतियों के सूखे पत्ते तथा काई आदि के अंश जल की अघुलनशील अशुद्धियाँ हैं।

जल का विशुद्धीकरण :—

हमने देखा कि जल में कई एक घुलनशील, अघुलनशील तथा रोगोत्पादक जीवाणु होते हैं। अशुद्ध जल के सेवन से नाना प्रकार के रोग जैसे, पेचिश, नारू, विशूचिका आदि होते हैं।

अतः जल को पीने से पहले शुद्ध कर लेना आवश्यक है।

(१) उबाल (Boiliug) जल को शुद्ध करने की आम विधि तो यह है कि उसे उबाल लिया जाए। उबालने से जल में जो रोगोत्पादक जीवाणु होते हैं वह मर जाते हैं। किन्तु धूल और रज-कण वैसे ही रहते हैं। थोड़ी देर रख छोड़ें अथवा फिटकरी मिला दे तो वे नीचे बैठ जाएँगे।

(२) निकष्ठन (Decantation) अशुद्ध जल को एक बर्तन में लेकर कुछ देर तक रख छोडिये। जल की अघुलन-

शील अशुद्धियाँ धीरे धीरे बर्तन के पेंदे में बैठती जाएँगी। इस प्रकार जो अघुलनशील पदार्थ पेंदे में बैठते हैं उन्हें अवसाद कहते हैं। बर्तन के ऊपर शुद्ध और स्वच्छ जल रह जाएगा। अवसाद को बिना धक्का दिये इस जल को दूसरे बर्तन में निकाल लें। जल को इस प्रकार शुद्ध करने की विधि को निकण्ठन कहते हैं। अतः निकण्ठन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा शुद्ध द्रव को दूसरे बर्तन में बिना अवसाद को धक्का दिये बदलना है।

आसवन (Distillation)

हमने देखा कि जल में कुछ घुलनशील पदार्थ भी होते हैं। इन पदार्थों को आसवन विधि से दूर किया जा सकता है किन्तु बड़ी मात्रा में इसका उपयोग नहीं हो सकता। जहाज यात्रा में जल को शुद्ध करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है।

प्रयोग
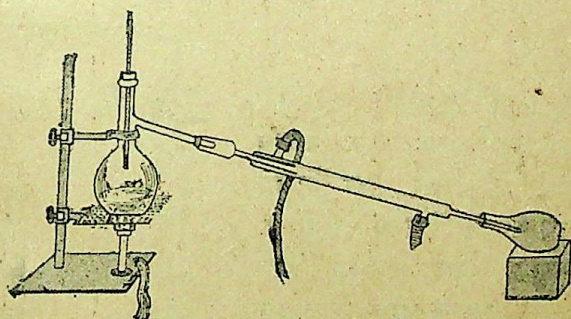
एक आसवन पलिघ में नमक जल लें। इसके मुँह को काग से बन्द करें। पलिघ से संघनक (eondenser को जोड़ दीजिए।

इसमें दो नाल होती हैं। भीतरी नाल पतली होती है जिससे भाप गुजरती है। ऊपर का नाल मोटा होता है। इन दोनों नालों के बीच ठण्डे जल का प्रवाह रहता है जो भाप का संघन करता है। इस संघनक का दूसरा सिरा आदाता (Receivor) में रहता है।

नमक जल को उबालने पर जल भाप में परिवर्तित होता है और संघनक द्वारा आदाता में जमा होता है। नमक पलिघ में रह जाता है। इस प्रकार जो जल प्राप्त होता है वह आसवन-जल कहलाता है। यह जल शुद्ध होता है।

पावन : (Filteration)

यह छानने की विधि है और हमारे देश में बहुत प्रचलित है। बहुधा लोग बारीक कपड़े से छान कर जल को शुद्ध करते हैं। किन्तु कपड़े के छिद्र सूक्षम न होने के कारण उनमें से अघुलनशील कण चले जाते हैं। अतः जल को एक कागज से जो पाव-पत्र कहलाता है पावन करते हैं।

प्रयोग :

पाव-पत्र को पहले मोड कर नम करिए और उसे एक साफ निवाप (Funnel) में रखिए। इस निवाप को निवाप-स्थान में रख कर थोड़ा थोड़ा अशुद्ध जल डालिए और शलाका से हिलाते जाइए। पावन होकर आने वाले जल को कंचुकी (Beaker) में जमा करिए। यह
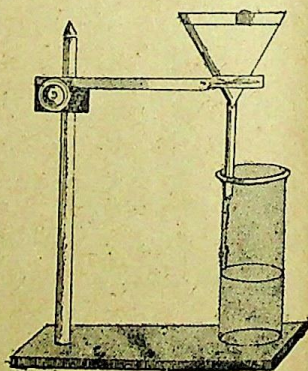
जल अघुलनशील कणों से रहित होगा।
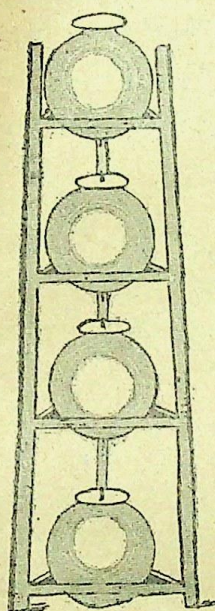
बड़ी मात्रा में जल को पावन करने के लिए घड़ों का उपयोग किया जाता है। कोयला, मोटी तथा बारीक रेत, इन घड़ों में रखते हैं और उनके पेंदों में छिद्र कर देते हैं। साधारणतया ये तीन या तीन से अधिक होते हैं। इन घड़ों को एक घड़ौंची पर रख दिया जाता है। निचले घड़े में न रेत होती है न छिद्र। पहले घड़े में कोयला और मोटी रेत रहती है और दूसरे में केवल बारीक रेत। अब अशुद्ध जल को ऊपर के घड़े में डालते हैं। जल छन २ कर दूसरे में गिरता है और दूसरे से तीसरे में जमा होता है। तीसरे घड़े में पहुँचने तक जल काफी शुद्ध हो जाता है और जल की अशुद्धता रेत और कोयले में ही रह जाती है।

फिटकरी :

जल में फिटकरी के मिलाने से वह अघुलनशील अशुद्धियां तथा दूसरे जीवाणुओं को अपने साथ लेकर नीचे तली में बैठ जाती है और ऊपर स्वच्छ जल रह जाता है। एक गैलन पानी के लिए $\frac{1}{4}$ ग्रेन फिटकरी प्रर्याप्त होती है।

दहातु अति लोहकयि : (Potasium per mangnate)

यह जीवाणु तथा गन्धनाशक है। यह प्रायः कुएँ और

तालाब इत्यादि का जल शुद्ध करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इससे हैजे के जीवाणु नष्ट होते हैं। इसको जलमें इतनी मात्रा में मिलाना चाहिए कि उसका रंग हलका गुलाबी हो जाए। ५ फीट व्यास और ८ फीट गहरे कुएँ के लिए ½ तोले दहातु अति लोहकीय प्रर्याप्त है।

नीरजी : (chlorine)

पानी शुद्ध करने की यह सरल और सस्ती विधि है। इस वाति के मिलाने से रोगोत्पादक जीवाणु नष्ट होते हैं। दस लाख भाग में एक भाग के अनुपात से यह वाति मिलानी चाहिये।

जल का बटवारा :

नगरों में जल का प्रबन्ध करने के लिये नदियों और तालाबों से लोहे के बड़े २ नलों द्वारा संचायकों में जल का संचय किया जाता है। यहां जल को शुद्ध करने के लिये फिटकरी मिलाई जाती है। जिससे बहुत सी अशुद्धियां शीघ्र लीन हो जाती है। इसके बाद कई एक पाव तंतय (Filter beds) से जिनमें कि रेत और कंकड़ होते हैं गुजार कर बड़े २ जलाशयों में जमा किया जाता है। यहां जीवाणुओं के नाश के लिये ब्लीचिंग पौडर Bleaching powder मिलाकर जल को क्लोरिन युक्त किया जाता है। अब जल पूर्णतया शुद्ध हो जाता है। इस जल को नलों द्वारा घर २ पहुँचाया जाता है।

अभ्यास

अभ्यास

(१) जल कितने प्रकार का होता है, विस्तार से लिखिए ?

(२) जल की कठोरता से क्या तात्पर्य है और वह किस प्रकार दूर की जा सकती है ?

(३) जल की अशुद्धियां कौनसी हैं और उन्हें दूर करने की विधियां कौनसी है ?

(४) निकण्ठन, आसवन और पावन की विधियों को समझाइए ?

(५) नगरों में जल का प्रबन्ध किस प्रकार होता है ?

अन्न

वायु और जल के पश्चात् हमारे जीवन का तीसरा आधार स्तम्भ अन्न है। हम देखते हैं कि इसी अन्न के लिए मानव कितने कष्ट झेलता है। कड़ी धूप में पत्थर फोड़ता है, मेहनत मज़दूरी के लिए दर दर की ठोकरें खाता है और देश छोड़ता है। इसलिए कि उसे जीना है और जीने के लिए अन्न आवश्यक है।

अन्न क्यों चाहिए :

हमारा शरीर निरन्तर कार्य करता है। चाहे हम जाग्रत अवस्था में हों अथवा निद्रावस्था में। निस्सन्देह जब हम सोते हैं तो हमारे शरीर को कुछ विश्राम अवश्य मिलता है; किंतु श्वास

प्रश्वास का चलना, हृदय का धडकना, रक्त का बहना और पाचन-क्रिया बराबर होती है। जागते है तो परिश्रम करते हैं, सोंचते विचारते बोलते और चिन्ता करते हैं। इन क्रियाओं से हमारे शरीर का जो ह्रास होता है उसकी पूर्त्ति का एक मात्र आधार यही अन्न है।

हमारे शरीर में कई धातुएँ हैं, उनकी वृद्धि के लिए अन्न आवश्यक है।

हमारे शरीर में सदैव उष्णता रहती है और उष्णता जीवन का लक्षण है। शरीर के भीतर होने वाली दहन-क्रिया के परिणाम स्वरूप शरीर में उष्णता उत्पन्न होती है। अतः इस क्रिया को बनाये रखने के लिए अन्न की आवश्यकता है।

हमारा शरीर एक इंजन के समान है। इंजन को चलने के लिए कोयले और पानी की आवश्यकता है। कोयले को जलाकर उष्णता उत्पन्न की जाती है और यह उष्णता शक्ति में परिवर्तित होकर इंजन को चलाती है। उष्णता का रूपांतर शक्ति है। इसी प्रकार शरीर में अन्न के कारण उष्णता आती है और उष्णता हमें शक्ति प्रदान करती है।

हमारे शारीरिक ह्रास की पूर्त्ति, धातुओं की वृद्धि उष्णता और शक्ति की उत्पत्ति के लिए अन्न चाहिए।

अन्न कैसा हो :

अन्न के महत्व और उसकी आवश्यकताओं को जान लेने के बाद यह भी जानना अवश्यक है कि हमारा अन्न कैसा हो। प्रायः

हम देखते हैं कि कुछ लोग अधिक मात्रा में भोजन करके भी क्षीण ही रहते हैं। इस के विपरीत कुछ लोग कम मात्रा में अन्न खा कर भी हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते हैं! कारण यह है कि अन्न में कुछ विशेष वस्तुएँ होती हैं और उनका उचित मात्रा में होना शरीर के लिए लाभदायक होता है। देखें कि वे विशेष वस्तुएँ हमारे अन्न में कौन-सी है।

(१) *प्रोभूजिन* (Protein) :

धातुओं की वृद्धि, रसों की उत्पत्ति और शक्ति को प्रदान करता है। यह वनस्पति, दूध, अण्डा और मांस से प्राप्त होता है।

(२) *वसा* (Fat) :

शरीर की उष्णता और पित्त को सरलता से बहने के लिए वसा की आवश्यकता है। घी, तेल और मक्खन में यह पाई जाती है।

(३) *प्रांगोदी* (carbo hydrate) :

इसका मुख्य कार्य ताप और शक्ति का उत्पादन करना है। यह हमें शर्करा, साबुदाना, रताल्‍लू, चावल, जौ, गेहूँ, आलू, गन्ना, चुकन्दर से मिलता है।

(४) *लवण* (Salt) :

यह पचन शक्ति और मांस पेशियों में शक्ति उत्पन्न करता है। तरकारियों मांस और अण्डों में पाया जाता है।

(५) *जल* :

रक्त का प्रवाह, पचन और मलमूत्र के त्याग के लिए आवश्यक है। खाद्य वस्तुओं से कुछ जल मिलता है और शेष हम पीकर प्राप्त करते हैं।

(६) *जीवाति* (Vitamin) :

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि जीवति तत्व अन्न का आवश्यक अंश है। अभी तक कई एक जीवतियों का पता चला है।

जीवति (क) अण्डा, मक्खन, और मछली के तेल में पया जाता है।
,, (ख) बीजों में जैसे सेम, मसूर और मटर आदि
,; (ग) फलों में जैसे नींबू, टमाटर और तरकारियाँ
,, (घ) 'क' के पदार्थों में 'घ' भी होता है
,, (ङ) दूध और हरी तरकारियों में

अच्छा अन्न :

अच्छा अन्न वह है जो हमें शक्ति दे, शरीर का विकास करें और शीघ्र पच सके। अन्न को हम उसी समय अच्छा कहेंगे जब कि उसमें प्रोभूजिन, वसा, कार्बोज और जीवति आवश्यक मात्रा में हो। यदि हमारे अन्न में किसी एक की भी कमी होती हैं तो उसे किसी दूसरी वस्तु से पूर्ण करनी चाहिए जिसमें कि वह हों। उदाहरण यदि हम चावल का उपयोग करते हैं तो हमें मालूम है कि चावल में जीवति-तत्व बहुत ही कम होते हैं किन्तु कार्बोज अवश्य होते हैं। अतः जीवति-तत्व के लिए तरकारी, दूध, दही, मांस, दहि और मक्खन का सेवन करना चाहिए।

जिस अन्न से स्वास्थ्य बिगडता है वह अन्न ठीक नहीं होता। सडी-गलि तरकारियों का प्रयोग नहीं करनी चाहिए। अन्न को खुला रख छोडने पर मक्कियों द्वारा कई एक रोगोत्पादक जीवाणु आजाते हैं जिससे वह खराब हो जाता है।

अन्न का पचन कैसा होता है

अन्न को मुँह में लेते ही पहले उसे चबाते हैं। कुछ ऐसी ग्रथियाँ मुँह में होती है कि जिनमें एक प्रकार का रस बनता है। यह रस अन्न के साथ मिल जाता है। जितनी अधिक मात्रा में यह होता है पचन क्रिया उतना ही अच्छा होता है। अन्न को ठीक तरह चबाना चाहिए।

चबाया हुआ यह अन्न, अन्न नाली से होता हुआ आमाशय (Stomach) में पहुँचता है। आमाशय परिमाण में बडा है। इसमें सिकुड़ने और फैलने का गुण होता है। आमाशय से आमाशयीक रस निकलता है। यह रस गैस्टिक कहलाता है। गैस्टिक रस से अन्न अच्छी तरह मिल जाता है और प्रोटीन का पचन होता है। बहुत देर तक अन्न आमाशय में रहता है।

आमाशय से भोजन पतला होकर क्षुद्रांत्र में आता है। यह टेढी मेढी घूमी हुई लम्बी नाल है। क्षुद्रांत्रीय रस, पित्त रस और क्लोम रस से अन्न पूरी तरह रस में परिवर्तित हो जाता है और छोटे छोटे उभारों (Projection) से जो क्षुद्रांत्र में असंख्य होते हैं उनके द्वारा रक्त में मिलता है।
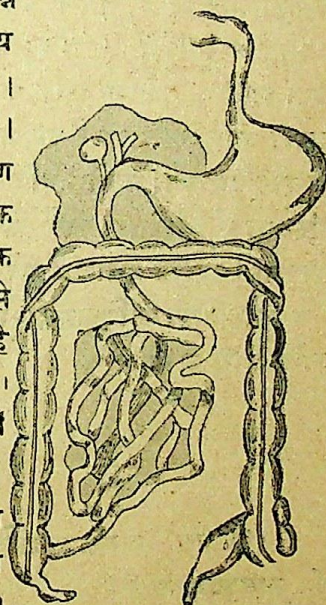
जिस अन्न का पाचन नहीं हो सका वह वृहदन्त्र से होते हुए मलाशय द्वारा बाहर निकाला जाता है। इस प्रकार हमारे शरीर में अन्न का पचन होता हैं।

नियमित अन्न से लाभ :

हमारा शरीर एक मशीन की तरह है। मशीन के पुर्जों के टूटने पर बनाये जा सकते हैं या दूसरे डाले जा सकते हैं। किन्तु हमारे शरीर की मशीन के पुर्जों के बिगडने पर उनका बनाना असंभव है। अतः इसके प्रयोग में सावधानी से काम लेना चाहिए। भोजन करने के पाँच घण्टे बाद तक हमें कोई दूसरी खाद्य वस्तु का सेवन न करना चाहिए, चाहे वह कितनी ही स्वादिष्ट क्यों न हो। यदि ऐसा न किया गया तो पचन संस्थान को निरंतर कार्य करना पडेगा और वे शीघ्र बिगड़ जायगा। इसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पडेगा। अतएव अन्न लेने का समय निश्चित होना चाहिए और वह आवश्यकता से अधिक भी न हो।

अभ्यास

(१) अन्न किसलिए चाहिए आर अच्छे अन्न में किन वस्तुओं की आवश्यकता है ?

(२) सचित्र वर्णन कीजिए कि अन्न का पचन किस प्रकार होता है ?

(३) नियमित अन्न के लेने से क्या लाभ होता है ?

शारीरिक शुद्धता

मनुष्य मात्र का जीवन बहुत ही महत्व पूर्ण है और उसका उद्देश्य महान् । वह संसार में घूमेगा, विद्वानों की बातों को सुनेगा, उनकी पुस्तकों का अध्ययन करेगा और फिर अपनी और मानव मात्र की उन्नति के साधन निकालेगा । यह सब तभी संभव है जब कि वह स्वयं स्वस्थ हो और उसके अंग-प्रत्यंग ठीक हों । अतएव शरीर की रक्षा और उसका उचित प्रयोग आवश्यक है ।

आँख :

हमारे शरीर में आँख कोमल इन्द्रिय है । प्रकृति ने स्वयं उसकी रक्षा का प्रबन्ध भौंहें और पलकों द्वारा किया है, किन्तु हमें भी उसकी सुरक्षा और सफाई की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये । अंधे बालक के जीवन की कल्पना कीजिए मालूम होगा कि उसके लिए संसार अंधकार-मय है । प्रकृति के सौंदर्य के आनन्द से वह वंचित है और सगे सम्बन्धियों को देखने में असमर्थ है ।
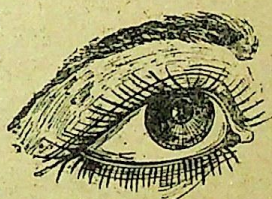
अंधापन चेचक, चोट के लगने और अनुचित प्रयोग के कारण होता है । कुछ अंधे जन्मजात होते हैं ।

विद्यार्थियों के दिन का बहुत बड़ा भाग पुस्तकों के अध्ययन में बीतता है । यह अध्ययन कार्य आँख की सहायता से

होता है। यदि आँखों का दुरुपयोग अधिक पढ़ने में किया जाए तो दृष्टि पर प्रभाव पड़ेगा। अतः

(१) कम और तेज प्रकाश में अध्ययन न करें।

(२) अध्ययन करते समय आँखों पर प्रकाश को सीधे न पड़ने दें।
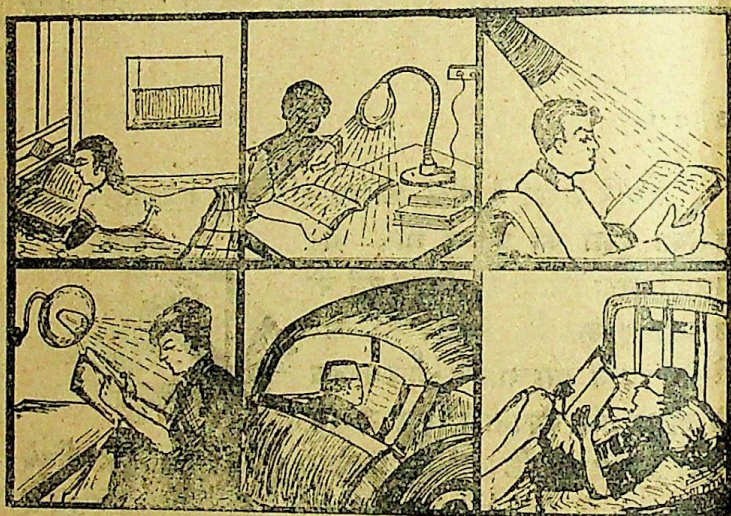
(३) लेट कर अध्ययन न करें।

(४) आँखों के निकट पुस्तक रख कर न पढ़ें। आँख और पुस्तक के बीच १९ इंच का अन्तर रहना आवश्यक है।

(५) लगातार अध्ययन कर रहे हैं तो बीच बीच में आंख को पुस्तक से हटाकर एक-दो मिनट विश्राम ले।

पढ़ना ही हमारा मुख्य काम नहीं है। हम घूमते फिरते, खेलते कूदते और अन्य काम-काज करते हैं। यहाँ भी हमें आंखों से काम लेना पड़ता है और सावधानी आवश्यक है।

(१) यदि आंख में कंकड इत्यादि पड़ जाए तो उसे रगडो मत और न उसे गंदे कपड़े या उंगली से निकालने का प्रयत्न न करें। अपितु गुलाब जल और बोरिक लोशन का प्रयोग करें।

(२) प्रातः उठते ही शीतल जल से आंख साफ करें।

(३) आंखों के लाल होने, जल के बहने, घाव होने और कम दिखाई देने पर डाक्टर से परामर्श कर उचित चिकित्सा करें।

नाक :

नाक से हम सूंघने के साथ श्वास-प्रश्वास का भी काम लेते हैं। नाक के भीतर कोमल झिल्ली तथा बाल होते हैं। बाल बहुत ही महत्व पूर्ण कार्य करते हैं। ये धूल तथा रोगोत्पादक जीवाणुओं को भीतर जाने से रोकते हैं। यदि कोई रोग नाक में हो जाय तो हम मुंह से सांस लेते हैं। यदि मुंह से अधिक सांस ली जाय तो गले के रोग तथा एडनाइड (Adenoid) हो जाती हैं। हमें नाक को साफ रखना चाहिए। साधारण जल तथा नमक का जल नाक में चढ़ाया जाए। पहले इससे असुविधा होगी किन्तु यह बहुत लाभ दायक है।

कान :

कान का मुख्य काम सुनना है। कम सुनने वाले मनुष्य

जीवन संग्राम में पिछड़े रहते हैं। आंख की तरह कान का भी महत्व है।

कान को हम मोटे तौर पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) बाह्य-कर्ण या कर्ण पल्लव (Pinna) (२) मध्य कर्ण (Tympanum) (३) भीतरी कर्ण।

मध्य भाग में एक इंच लम्बी नाल होती है जिसे कर्ण गुहा (Auditory canal) कहते हैं। कर्ण पल्लव ध्वनि तरंगों का संकलन कर कर्ण-गुहा द्वारा भीतरी भाग को भेजता है। इस कर्ण-गुहा के बन्द हो जाने, सर्दी खांसी से इसके भीतरी भाग में सूजन के आजाने अथवा पीप के बहने के कारण बहिरापन हो जाता है। अतएव—

(१) कान में उंगली, काड़ी अथवा आलपिन भूलकर न डालें।

(२) कान पर न मारें।

(३) पानी अन्दर न जाय। यदि चला भी जाए तो कुछ बून्द ग्लीसरीन डाल देना पर्याप्त होगा।

४) चींटी और कीड़े आदि के प्रवेश करने पर कुन-कुनाता तेल डालें।

(५) पीप के बहने, कम सुनाई देने, पीड़ा के होने अथवा फोड़ा-फुंसी के होने पर डाक्टर से तुरन्त परामर्श करना अत्यन्त लाभदायक होगा।

दाँत :

जो वस्तु हम खाते है उसके चबाने का पहला कार्य हमारे दाँतों से होता है। बच्चों में इनकी संख्या २८ और प्रौढ़ों में ३२ होती है। दाँतों की रचना भी बड़ी विचित्र हैं। दाँतों में सबसे ऊपर सफेद और चमकदार जो परत दिखाई देती है वह आकाल (Enamal) है। इसके भीतर मोटी परत होती है जिसे दंती (Dentine) कहते हैं। सबसे भीतर खाली स्थान होता है जो (Pulp cavity) कहलाता है। इसमें रक्त की नाडियाँ होती हैं जिनके कारण पीड़ा मालूम होती है।
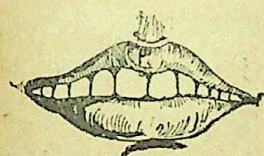
दाँतों के रोग बड़े भयंकर होते हैं। जिन वस्तुओं का हम सेवन करते हैं उनके कुछ अंश दाँतों के बीच रह जाते हैं। यदि इन्हें साफ न किया गया तो वे सड़ जाती है और मसूड़ों से पीप और कभी २ रक्त आने लगता है। ये रोग दंतपूत्र (Pyorrhoea alueolars) कहलाता हैं। इसकी चिकित्सा बड़ी कठिन है। पीप और रक्त पेट में प्रवेश करता है तो पचन बिगड़ जाता है। अतएव—

(१) दाँतों को रोज शुद्ध करें।

(२) अन्न लेने के पूर्व और पश्चात् ठीक प्रकार से साफ करें।

(३) ब्रुश अथवा दतौन (नीम या बबूल) का प्रयोग करें।

(४) सोने से पूर्व कुल्ला करके दाँतों को शुद्ध करलें।

बाल :

बाल पूरे शरीर पर होते हैं किन्तु सिर पर अधिक और लम्बे होते हैं ! इनकी शुद्धता भी आवश्यक है ।

बाल चर्म में धँसे रहते हैं और उनके मूल में एक थैली होती है । इस थैली में एक प्रकार का तेल पाया जाता है जिसके कारण बाल चमकदार रहते हैं । यदि साबुन, रीठे, बेसन या सोड़े से इन्हें न धोया गया तो सिर के चर्म के छिद्र बन्द हो जाएँगे और तेल नहीं निकलने पायेगा । बाजारी सुगन्धित तेलों का जहाँ तक संभव हो प्रयोग न करें । इनमें सफेद तेल (White oil) होता है जो बालों के लिए हानिप्रद है । तिल्ली का तेल उत्तम होता है । जिस साबुन का प्रयोग हम बालों की सफाई के लिए करें उसमें अधिक खार न होनी चाहिए ।

नाखून :

हम अपना अन्न अंगुलियों द्वारा लेते हैं और इन अंगुलियों पर नाखुन बढ़ते हैं । नाखूनों के बढ़ने पर मल जम जाता है और रोगोत्पादक जीवाणु जो उस मल में होते हैं शरीर के भीतर अन्न के साथ चले जाते हैं और रोगों का कारण बनते हैं । अतः नाखुनों का शुद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है ।

गला :

खाँसी और सर्दी के कारण पीड़ा हो जाती है । ऐसी अवस्था में शीघ्र डाक्टर से परामर्श करना उत्तम होगा । गले को

शुद्ध रखने का एक और उपाय यह है कि जलमें नमक मिला कर गरारे करें।

चर्म :

हमारा पूरा शरीर चर्म से ढका हुआ है। इसकी दो परतें होती हैं। बाह्य और भीतरी। बाह्य परत में रक्त की नालियाँ नहीं होती। किन्तु इसमें नीचे से ऊपर की ओर जाने वाली कई एक नालियाँ होती हैं। इन नालियों को स्वेद नालियाँ कहते हैं। भीतरी परत में ग्रन्थियाँ होती हैं जिनका मुँह बाह्य परत में खुलता है। इन ग्रंथियों को स्वेद ग्रंथियाँ कहते हैं। इसलिये कि इन्हीं ग्रन्थियों द्वारा स्वेद (पसीना) निकलता है जो स्वेद नालियों से होता हुआ बाहर आता है। चर्म को सूक्ष्म दर्शक यन्त्र (Miscroscope) से देखने पर ये स्वेद नालियाँ छिद्रों के रूप में दिखाई देंगी। स्वेद रक्त के दूषित पदार्थों को बाहर लाता है। यदि शरीर को स्वच्छ न रखा जाय तो छिद्र बन्द हो जाएँगे और रक्त के दूषित पदार्थ न निकल पाएँगे। परिणाम यह होगा कि हम चर्म रोगों जैसे दाद, खाज इत्यादि के शिकार बनेंगे और दूसरों को छूकर शिकार बनाएंगे। अतः चर्म को नित्य अच्छी तरह स्नान कर उसे शुद्ध रखना चाहिए।

अभ्यास

(१) आँख की रक्षा किस प्रकार करेंगे ?

(२) आँखों के रोग कौन से हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं ?

(३) कान की बनावट को समझाइए ?

(४) चर्म को शुद्ध क्यों रखनी चाहिए ?

(५) बाल, गला और नाखून के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?